International Journal in Management and Social Science
Volume 10 Issue 01, January 2022 ISSN: 2321-1784 Impact Factor: 7.088
Journal Homepage: http://ijmr.net.in, Email: irjmss@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

कबीर ग्रंथावली की वर्तमान में प्रसांगिकता

डॉ गुरनाम संह
एसो सएट प्रोफेसर(हिंदी)
आई बी स्नातकोत्तर महा वद्यालय, पानीपत

सार

काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर की अभिव्यक्ति अपने परिवेश में स्फूर्त एवं स्वयं अनुभव का परिणाम है। संतों का अनुभव उनके आंखों देखिए समाज अथवा इतिहास में से गुजरते हुए संवेदनशील मनुष्य का अनुभव है। वे उपेक्षित, शोषित, बहिष्कृत, अशिक्षित, शास्त्रज्ञान से रहित, किंतु संस्कारवान रचनाकार थे, जो श्रमिक वर्ग से जुड़े हुए थे। इतिहास की उन विषम परिस्थितियों में जिए थे। इतिहास की इन विषम परिस्थितियों ने ही इनके व्यक्तित्व को विसंगतियों से लड़ने का साहस प्रदान किया था। चेतना और व्यवहार की निरंतर लड़ाई ने इनकी वाणी को जीववंता एवं अर्जस्विता प्रदान की है।

प्रसांगिकताका अर्थ है प्रसंगवश सामने आई हुई बात। यहां यह भी प्रसांगिक है 'अथवा' इसी प्रसंग में यह भी है। दूसरे अर्थ में हम प्रसांगिकता की चर्चा तब करते हैं जब रेलैवबैस की बात सोच रहे होते हैं–और अधिकतर अंग्रेजी शब्द हमारे मन में होते हैं। काल संदर्भ में प्रासंगिकता का निर्णय भी इसी कसौटी पर हो जाता है। विभिन्न युगों में विभिन्न शक्तियां स्वाधीनता को बढ़ाने वाली रही है, इसी के अनुसार उनकी युगीन प्रसांगिकता का निर्णय होता रहा हैं।

पूर्व पीठिका

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके युग और समाज में शारीरिक दास्तां का बाहुल्य था। कबीर इस बात का अनुभव सबसे करते थे कि शारीरिक स्वतंत्रता के पहले विचार स्वतंत्रता आवश्यक है। जिनका मन ही दास्तां की वीडियो से जकड़ा हो, वह पांवों की जंजीरे क्या तोड़ सकेगा। कबीर युगीन समाज में लोग अनेक प्रकार से अंधविश्वासों में फंसकर हीन जीवन जी रहे हैं। इसी से मुक्त करने का प्रथम कबीर ने सबसे पहले किया। कबीर जन्म को आडंबर से परे एक मात्र सत्य सत्य मानते थे, जिसके हिंदू मुसलमान आदि विभाग नहीं हो सकते। उन्होंने किसी नामधारी धर्म के बंधन में अपने आपको नहीं डाला और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिंदू हूं न मुसलमान। सत्य को कबीर धर्म मानते हैं, वह सब धर्मों में हैं। कबीर अनुसार धर्म सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ संबंध है। उन्होंने कहा भी है 'अपरंपार का नाडे अनंत'[1]

इसी घनिष्ठता के कारण कबीर के काव्य की श्रेष्ठा न केवल भक्ति काल में ही थी अपितु भक्ति काल से लेकर आज तक के जीवन में अक्षुण्ण बनी हुई है। यही अक्षुण्णता उनके काव्य को अमृता की संज्ञा प्रदान करती हुई वर्तमान में उनको मूल्यांकित करवाती है।

अपने युग के साथ भक्तिकालीन संत कवि कबीर का रचनात्मक संवाद आज की जीवन सीटीओ में भी प्रासंगिक बना हुआ है क्योंकि इस संबंध में कबीर ने जिन मूल्यों एवं प्रश्नों को उठाया है वर्तमान सभ्यता एवं समाज क संकटों की भी पहचान करने में मदद देते हैं और आधुनिक मनुष्य को एक बेहतर विकल्प की तलाश के लिए प्रेरित करते हैं।

कबीर की स्पष्ट घोषणा है–'मैं कहता हूं आंखन देखी'[2]रचना का यह अनुभव केंद्रीय तो हमारे समय की सबसे मूल्यावान धरोहर है। आज जीवन के प्रत्येक स्तर पर सूचना की प्रधानता हो गई है। अनुभव का सीमित होना संस्कृति के सीमित होने का संकट है। कबीर की कविता वर्तमान में सूचना तंत्र की निस्सारता को उजागर करती है।

कबीर की कविता आज की दुनिया में मूल्य चिंता की अनुपस्थिति को भी रेखांकित करती है। आज के बाह्य चकाचौंध से भरी एवं स्वकेंद्रित समाज में मूल्य–चिंता उपजती है। कबीर में यह बोध उपस्थित है–

सुखिया सब संसार है खावै अरु सौवें।
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।[3]

कबीर ग्रंथावली अपने समय के मूल संकट की पहचान करती हैं।

विराट के लोग के कारण संबंध एवं आचरण के धरातल पर अंधता एवं कोलाहल दिखाई देता है। अतः कबीर विराट के महत्व को रेखांकित करते हैं। विराट से विच्छिन्नता के कारण ही क्षुद्रताओं का उदय होता है। वर्तमान में बाजार व्यवस्था की क्षुद्रताओं के कारण राष्ट्र मानवता, सामाजिकता जैसी बड़ी चीजों का बोध खत्म होता जा रहा है। कबीर कविता इन क्षुद्रताओं को पहचानने की शक्ति देती है। कबीर काव्य की अंतर्वस्तु एवं भाषा के धरातल पर मध्यकाल के आभिजात्य के दुर्ग को तोड़ती है। वह संबंधों एवं भाषा के स्तर पर सहजता पर बल देती है। मध्यकाल में धर्म का कर्मकांडी स्वरूप, ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था एवं विलासिता आभिजात्य के लक्षण थे। आज भी नए रूपों में ये समकालीन संकट बने हुए हैं। कबीर काव्य के दोहे इन से मुठभेड़ करते दिखाई पड़ते हैं।

इस ब्रह्म के निर्गुण में शब्दों के प्रयोग में जो अत्यंत शुद्धता और सावधानी बहुत आवश्यक है, कबीर काव्य में उसे पाने की आशा करना व्यर्थ है, कबीर का तत्वज्ञान दार्शनिक ग्रंथों के अध्ययन का फल नहीं, वह

उनकी अनुभूति और सार ग्रहिता का प्रसाद है। संत कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे जो कुछ ज्ञान संचय किया, वह सब सत्संग और आत्मानुभव से था । हिंदू मुसलमान सभी सत फकीरों का समागम कबीर ने किया। इसी समागम के कारण संतकबीर में हिंदू भावों के साथ मुसलमानी भाव भी आए। अध्यक्ष स्वरूप कबीर रचनाओं में भारतीय ब्रह्म वाद का पूरा पूरा विस्तृत वर्णन मिलता है। कबीर ने इस विस्तृत वर्णन में केवल उन्हीं भावों को प्रस्तुत किया जो मुसलमानी एकेश्वरवाद के अधिक मेल में थी। कबीर अनुसार इस मेल का ड्रेस सर्वदा हिंदू मुस्लिम ऐक्य था, वर्तमान समाज में यह ऐक्य प्रासंगिकता का मुख्य भाव व्यक्त करते हुए समाज हितार्थ सिद्ध होता नजर आता है। कबीर पहुंचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पौधों से चुराई सामग्री नहीं थी और न वह सुनी सुनाई बातों का बेमेल भंडार ही था। पढ़े लिखे तो बे थे नहीं, परंतु सत्संग से भी जो बातें उन्हें मालूम हुई, उन्हें वे अपनी विचारधारा के द्वारा मानसिक पाचन से अपना ही बना लेने का आवेदन करते थे। उन्होंने स्वयं कहां है ''सो ज्ञानी आप विचारै'' । [4]

कबीर चिंतन में कई बातें ऐसी मिलती हैं, जिनका उनके सिद्धांतों के साथ मेंल नहीं पड़ता। उसकी ऐसी अंखियों की प्रासंगिकता को युगीन स्थितियों के साथ साथ संसर्ग समन्वय झलकता है। साहित्यिक दृष्टि से वृंद और कबीर की विदग्धता एक ही है। लेकिन भूषण, जायसी और कबीर में कौन बड़ा है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। तीनों में सच्चे कवि की आकुलता समान है, और अपने क्षेत्र में तीनों की पूरी पहुंच, यदि आध्यात्मिकता को भौतिकता से श्रेष्ठ ठहरा कर कोई कबीर काव्य की प्रासंगिकता को सर्वोच्च माने तो रुचि स्वातंर्त्य के कारण उसे यह अधिकार है। तुलसी को छोड़कर हिंदी भाषी जनता पर कबीर के बराबर या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नहीं पड़ा।

कबीर ग्रंथावली की प्रसंगिकता भाषा के स्तर पर बहुत उच्च स्तर की महत्व रखती है। आज भाषा की अप्रमाणिकता मनुष्य एवं सभ्यता के प्रति सबसे बड़ा संकट है। आज की समूची सभ्यता बाजार एवं राजनीति की चरित्रहीन भाषा में फंसी हुई है। ऐसे में कबीर की भाषिक चेतना प्रतिमान रखती है –'वह है भाषा का इकहरापन'। [5]

इस तरह सर्वधर्म समभाव, सम दृष्टि, अपरिग्रह कर्म योग तथा दया आदि मानवीय गुण कबीर के मूल मंत्र है जो परंपरागत समाज ही नहीं, प्रबुद्ध और प्रगतिवादी समाज के लिए भी इतने सार्थक हैं कि उनके कभी भी अप्रासंगिक होने का प्रश्न नहीं उठता।

उपसंहार

कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा था वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था। अतएव सीखकर प्राप्त की हुई रसिकता का काव्यानंद उनमें नही मिलता। परंपरा से बंधे हुए लोगों को काव्यजगत में भी इंद्रियलोलूपतासूपता का क्रीडा बन कर रहना भी भला लगता है। कबीर ऐसे लोगों की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे या जिनको निरपेक्षी के प्रति होने वाला उनका प्रेम भी शुष्क लगता है। प्रेम की परकाष्ठा आत्मसमकारण का मानो काव्यजगत् में कोई मूल्य ही नहीं है। कबीर ने उपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नही चढ़ाया है। जो अलंकार उनमें मिलते भी है वे उन्होने खोज खोजकर नहीं बैठाए हैं। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी के अर्थ में कला को उनमें सर्वथा अभाव है। बेसिर पैर की खोज, 'वाघवी अवस्तुओं' का स्थान और नामनिर्देश कर देने को कविकर्म कह कर शेक्सपियर ने कवियों को सत्रिपात या पागलपन मे बेसिर पैर की बातें बकने वाले की श्रेणी में रख दिया है। जिन कवियों के संबंध में 'कि न जलपति' कहा जा सकता है। उन्हीं का उल्लेख (कि न खादति' वाले वायसों के साथ हो सकता है। सच्ची कला के लिये तथ्य आवश्यक है। भावुकता के दृष्टिकोण से कला आडंबरों के बंधन से निर्युक्त तथ्य है। एक विद्वान कृत इस परिभाषा को यदि काव्यक्षेत्र में प्रयुक्त करे तो कम कवि सच्चे कलाकारो की कोटि में आ सके । परंतु कबीर का आसन उसे ऊँचे स्थान पर अविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कबीर के काव्य में तथ्य की स्वतंत्रता नही मिलती तो और कहीं नही मिल सकती । कबीर के महत्व का अनुमान इसी से हो सकता है।

संदर्भ सूचीः–

1. सं. डॉ. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली पृष्ठ संख्या –25

2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ संख्या 60

3.सं. डॉ. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली पृष्ठ संख्या –35

4. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कबीर वचनावली, पृष्ठ संख्या 73

5. सं. हंसादास शास्त्री, कबीर बीजक शब्द, पृष्ठ संख्या 116

शब्दकोश–1 सं – राम प्रकाश सक्सेना– भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली–110003

पत्रिका–1 सं –राकेश रेणु, आजकल –लोधी रोड, नयी दिल्ली–110003